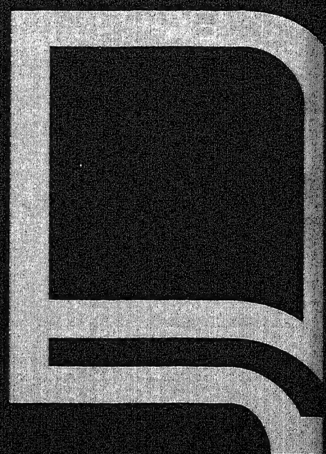
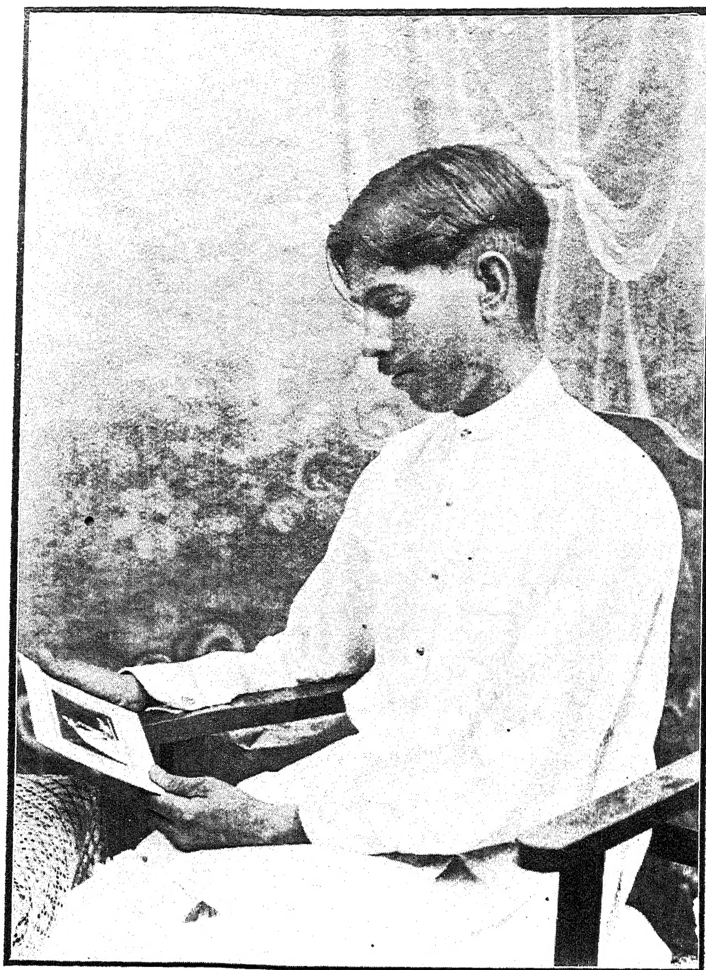


A5

आँखों में

हरिकृष्ण "प्रेमी"





श्रीहरिकृष्ण "प्रेमी"

हृदय-तरंग-माला की प्रथम हिलोर

आँखों में

लेखक

हरिकृष्ण "प्रेमी"

प्रकाशक

कलाधर-किरण-मंडल, लश्कर,
ग्वालियर

सोल एजेंट
साहित्य-भवन लिमिटेड,
प्रयाग ।

प्रथमबार एक हज़ार

मूल्य १)

मुद्रक—
सूरजप्रसाद खन्ना,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

प्रकाशक की ओर से—

कलाधर-किरण-मण्डल की संस्थापना के मूल में कतिपय भावुक लेखकों की अन्तर्वेदना और आत्मप्रेरणा काम कर रही है। उन्हीं के सहयोग और उन्हीं के हित-साधन में इस मण्डल का अथ और इति है। अतएव, लेखकों ही का आशीर्वाद और उन्हीं की शुभ कामनायें हमें इस कार्य में प्रवृत्त करा रही हैं।

'हृदय-तरंग-माला' इस उत्साह की एक उमंग है; 'प्रेमी' जी की 'आँखों में' उसका प्रथम प्रसार हुआ है। 'मण्डल' को 'प्रेमी' की प्रतिभा का यह प्रथम उपहार प्राप्त हुआ है। पाठकों की सेवा में इस भेट को रखते हुए हमें हृदय से प्रसन्नता हो रही है। यदि उन्हें इससे संतोष हुआ, तो वही हमारे उत्साह का कारण होगा।

संयोजक—

लश्कर, ग्वालियर } कलाधर-किरण-मण्डल

कलाधर-किरण-मण्डल

उद्देश्य—

१ हिन्दी के द्वारा सुन्दर, सरस और सुरुचिपूर्ण साहित्यिक रचनाओं का प्रकाशन करना।

२ हिन्दी के सत्साहित्य का विविध भाषाओं में रूपान्तर प्रस्तुत कराना।

३ मंडल के सदस्यों के लिए लेखन एवं अध्ययन सम्बन्धी सुविधाएं तथा साधन जुटाने का यथासंभव प्रयत्न करना।

नियम—

१ सदस्य —

मंडल के उद्देश्य के अनुरूप साहित्य-सृष्टि करने वाले एवं सच्चे हृदय से सहयोग प्रदान करने वाले व्यक्ति इस मंडल के सदस्य हो सकेंगे।

२ प्रवेश शुल्क —

अ—मंडल के उद्देश्य के अनुरूप, कम से कम ७५ पृष्ठ की पुस्तक का, जिसे मंडल स्वीकृत करे, सर्वाधिकार।

अथवा

आ—कम से कम २००) एक मुश्त नक़द।

३ प्रबन्ध —

प्रबंध का सारा भार मंडल के सदस्यों पर रहेगा और उन्हीं की सम्मति से निर्वाचित मंडल का एक सदस्य संयोजक का कार्य करेगा।

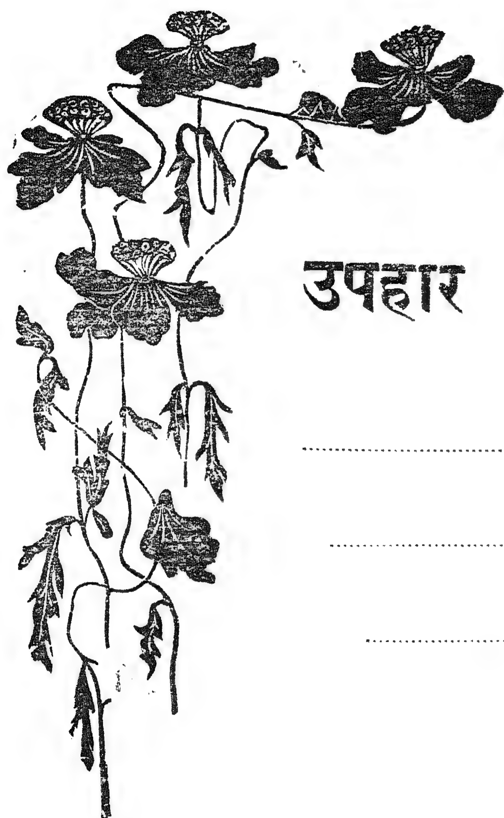
४ प्रकाशन —

प्रत्येक पुस्तक के प्रकाशन के पहले उस पर मंडल के सदस्यों का अनुकूल बहुमत प्राप्त होना आवश्यक है।

५ संचालन —

इनके अतिरिक्त कार्य-संचालन के लिए आवश्यक नियमों का विधान मंडल समयानुसार तैयार कर सकेगा।





उपहार

....

....

....

अर्घ

जिसके हृदय-द्वार पर मैं भिखारी
के रूप में आया था, आज उसी
को अपनी "आँखों में" अर्घ
देते लाज लगती है ! जिसने
मेरे हृदय को बासे फूलसा फेंक
दिया, मेरी कोमलता को कुचल
दिया, पर, पीड़ा की मधुर भीख
दी, मेरी "आँखों में" उसी की
स्मृति की अमरता है ! जिसके
प्रथम अनुभव में आकर्षण था,
प्रथम दर्शन में लूट, प्रथम
मिलन में चोरी और विरह
में मीठापन-मादकता, उसकी
निष्ठुरता की आँखों में मेरी—
"आँखों में" अर्पित है !

"प्रेमी"

आँखों में

किसके अन्तस्तल में भर दूँ
अपनी आँखों का सन्देश ?
किसने इस जग में देखा है
मेरे प्रियतम का शुभ देश ?

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

परिचय

गुना के काव्य-निर्झर वेदनावतार "प्रेमी" और उनकी इस कमनीय कृति का परिचय देने का मीठा भार उठाते हुए मुझे, हर्ष हो रहा है अपने सौभाग्य पर; और, खेद हो रहा है अपनी अयोग्यता पर। यदि कविता की "नीरव भाषा" समालोचक-संसार में भी मान्य होती, तो, शायद मुझे अपनी अक्षमता का यह धृष्ट प्रदर्शन न करना पड़ता। किन्तु, "सर्वः कांतमात्मीयं पश्यति" के अनुसार, "प्रेमी" को मुझ से बढ़कर कोई परिचायक न मिलने और मुझमें उनका आग्रह टालने की शक्ति न होने के कारण, मुझे उनकी इस मधुर रचना में अपनी इन पंक्तियों की "मख़मल में टाट की गोट" लगाने को बाध्य होना पड़ा।

कविता-कामिनी को सजी-सजाई नटखट रमणी की अपेक्षा भोली-भाली और स्वाभाविक वन-कन्या के रूप में अधिक तन्मयता से देखने वाले कवियों में "प्रेमी" का भी एक स्थान है। वे केवल कविता लिखते समय ही नहीं, आठों पहर कवि रहते हैं और सच्चे कवि रहते हैं। कविता को अपने जीवन का सर्व-व्यापक और स्थायी अंग बना लेने वाले कवियों में, मैं "प्रेमी" को एक अलग स्थान देता हूँ। कौन जानता है, कि, उन्हें, कविता से इतने अभिन्न होने के कारण ही क्या-क्या न सहना पड़ा है!

मशीनों की अनवरत हृदयहीन "खड़-खड़", उद्यानों के कृत्रिम कुटीर या प्रासादों की कोमल सुख-शय्याओं में पड़े-पड़े, कल्पना को कोंच कोंच कर, अवहनीय शृङ्गार के भार से कविता का कचूमर निकालने वाले कवि-पुंगव क्या जानें कि, विश्व के कोलाहल से दूर निस्तब्ध निर्जन में वेदना-निवेदन करने वाले सुकुमार निर्झर के स्वर में स्वर मिला कर रोना कैसा होता है, नीरव निशा के अँधियारे आँचल में सिसक-सिसक कर रह जाने वाले सितारों की ओर अपलक ताकते-ताकते रातें बिता देना किसे कहते हैं; पतझड़ के निष्ठुर पदाघातों से पद-दलित पीलेपन की नीरस निराशा के कर्कश "खर-खर"—स्वर को पत्ते-पत्ते में खोजते फिरने में हृदय का पीड़ा से भर आना क्या होता है, और, समाज के तिरस्कृत अर्धमुकुलित फूलों के सूखे मुखों के मुरझाए उच्छ्वासों को हृदय में चुन-चुन कर भर लेने पर भी शुष्क अधरों पर विरस हास का बरबस अभिनय करने में कितनी वेदना होती है।

हमारे "प्रेमी" के दुर्भाग्य के उपर्युक्त अनेक स्थायी अंग, उन्हें चाहे कवि न बना पाए हों, पर पागल अवश्य बना चुके हैं—पीड़ित अवश्य बना चुके हैं—और कभी का बना चुके हैं।

"प्रेमी" का जन्म वेदना में हुआ है, जीवन वेदना में बीत रहा है और अवसान............? किसी अज्ञात करुणा का यह प्रक्षुब्ध सागर भविष्यद्-गिरि के गर्भ से धीरे-धीरे निर्झर के रूप में निकल-निकल कर किसी दिन साहित्य-संसार के किसी सूने और सूखे भाग को

अवश्य प्लावित कर देगा, यह कई सरस साहित्यिक ऋषियों का आशीर्वाद है।

देने के लिए "प्रेमी" के पास केवल एक संदेश है, जो उनकी पंक्ति-पंक्ति से—अक्षर-अक्षर से—फूट रहा है। संदेश नया नहीं है। सारा संसार इससे परिचित है। फिर भी, अपरिचित है। अपने ही हृदय की बात जिससे इस सुन्दर रूप में निकले उस हृदय को कौन पीड़ित हृदय प्यार न करेगा? "प्रेमी" की लोक-प्रियता का रहस्य भी इसी में है!

एक बीस-इक्कीस वर्ष के मादक कवि-हृदय से जितनी आशा की जा सकती है, उससे कहीं अधिक मद, कहीं अधिक रस, कहीं अधिक पीड़ा, और क्या कहें, कहीं अधिक करुणा "प्रेमी" रसिकों के प्यालों में ढाल दिया करते हैं।

साहित्योपवन के मदान्ध गजों द्वारा यदि यह सरस सुमन खिलते ही कुचल न दिया गया, तो कौन कह सकता है कि इसके काव्य-रस पर, भविष्य में, असंख्य रसिक भौंरे न ललचाएँगे?

यदि आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का विशाल हृदय करुणा के आकस्मिक आघात से एक व्यथा-भरे अभिशाप के रूप में प्रवाहित होकर अखिल विश्व को प्लावित कर सकता है, तो यह भी संभव नहीं, कि प्रेमी का कोमल हृदय करुणा, उन्माद और वेदना के त्रिशूल को आठ-पहर अन्तरतम के आंचल में पालते हुए भी सहृदयों के हृदयों में एक हलकी-सी टीस उत्पन्न न कर सके।

जिसके हृदय ने, कभी किसी पीड़ित के घावों पर सहानुभूति की पट्टी बाँधी है, कभी किसी दुखिया को "दुखिया की आँखों" से देखा है, कभी किसी व्यथित की वेदना को "आँसुओं की भाषा" में पढ़ा है, वह "प्रेमी" के अस्त-व्यस्त उष्ण उच्छ्वासों को उनके अक्षर-अक्षर में अनुभव किए बिना न रहेगा। अस्तु।

"प्रेमी" का वर्तमान जीवन आज से लगभग बीस वर्ष पहले से प्रारंभ होता है। ग्वालियर-राज्य के नागरिक विभव-विलासों की मोहक छटा तरसती ही रह गई और उन्होंने गुना के पार्वत्य वन-वैभव को अपने प्रथम रोदन से मुखरित कर दिया। वनदेवी अपने सूखे सुमनों की बिखरी मालाओं में मुँह छुपा कर बरसों बाद, एक बार अवश्य मुस्काई होगी—अपने उस स्वल्प किन्तु अपूर्व सौभाग्य पर! किन्तु, वह मुसकान शीघ्र ही म्लान हो गई, जब वर्तमान नागरिक शिक्षा-लयों की नीरस मशीनें निष्ठुर बनकर उस वनवासी को एक बार अपनी कड़ी गोद में खींच ही लाईं—न मानीं। आखिर कब तक तरसती रहतीं! उन्हें भी तो उस खिलौने को कुछ दिन अपना बंदी बना कर रखने की लालसा थी! कई साल यों ही बीते। एक दिन जब आसपासके मायावादी कह ही रहे थे कि, "खूब किया जो तुमने इसको ला पिंजड़े में बन्द किया" चिड़िया चुपचाप अपने पुराने परि-चित स्वच्छंद समीर के प्यारे प्रवाह में उसी ओर बह गई। तब से अब तक पिंजड़ा खुला ही पड़ा है।

वेदना-वाद के कँटीले पथ के नवजात पागल पथिक "प्रेमी" को अपने पागलपन के पीछे घर में ही निर्वासित होना पड़ा। कभी-कभी "पागलपन" को प्यार करने वाले कुछ लोभी भौरें उन्हें अपनी कृतियों का सार्वजनिक रसास्वादन कराने को भी बाध्य करते रहे। "प्रेमी" ने अनमने हृदय से सब कुछ स्वीकार किया। हृदयवालों के सच्चे आग्रह को टालना तो जैसे उन्होंने सीखा ही नहीं है! उसी का फल है, कि, पत्रकारों की और प्रकाशकों की प्रवीण दृष्टि भी उनपर पड़ गई है। आज उनके सम्मुख भिन्न-भिन्न साहित्यिक आकर्षण भिन्न-भिन्न रूपों में उपस्थित हैं। इनमें यदि कोई सचमुच इतना सात्विक और स्वाभाविक हुआ कि उनके हृदय का सदुपयोग कर सके, तो वह अवश्य ही उन्हें अपनी ओर एक बार खींचकर सदाके लिए खींच लेगा!

गुणों के साथ "प्रेमी" में कई उल्लेखनीय दोष भी हैं, जिनमें से दो तो लोगों को बहुत ही खटकते हैं। एक तो, वे अपनी आर्थिक और शारीरिक उन्नति के विषय में किसी भी स्वजन या गुरुजन का ज़रा भी उपदेश सुनना पसन्द नहीं करते, और दूसरे, वे परले सिरे के लापरवाह हैं। इन दोनों दारुण दोषों ने उनका सांसारिक जीवन जैसा बना रक्खा है, वह उन्हीं के सहने की चीज़ है। सामान्य व्यक्ति तो उसके स्मरण-मात्र से ही विचलित हो जाते हैं; फिर भी, वे अपने उक्त दोषों को कवि जनोचित ही समझते हैं, यह स्वाभाविक ही है।

"प्रेमी" के परिचय का नशा अब कुछ उतार पर आ गया है। लेखनी फिर छकने की लालसा से अब उनकी प्रस्तुत पुस्तक का परिचय देने को प्रस्तुत होती है।

"व्यथित हृदय की पहली झाँकी
उर के ये थोड़े उद्गार।
शेष, सिन्धु-सा छिपा हुआ है
अन्तस्तल में हाहाकार !!"

"प्रेमी" की इन पंक्तियों के अनुसार यह कृति उनके हृदय का केवल आंशिक प्रदर्शन है—सर्वांगीण नहीं ! उनकी विस्तृत जीवन डायरी का यह एक पृष्ठ है—केवल एक पृष्ठ !

सिसकते शीत का वह कैसा अद्भुत कँपित अरुणोदय था, जिसने अकस्मात् आकर "प्रेमी" के दग्ध हृदय में एक अपूर्व आग लगा दी ! धीरे-धीरे, अन्तर का उच्छ्वसित धुआँ वाष्प बन-बनकर आँखों में मँडराने लगा। आँसू टपकने लगे। कविता बनने लगी। छंदों की जंज़ीरें लेकर पिंगल पहुँच ही न पाया, व्याकरण की बेड़ियाँ उठाकर शब्द-शास्त्र आही न सका, तुकों का जाल लेकर कोष आ ही रहा था, अलंकारों का भार लादे नायिका-भेद दूर ही था कि, 'आँखों में' कविता बनकर गुपचुप तैयार हो गई !

"प्रेमी" की कविता में, गति है, यति नहीं। शोभा है, शृङ्गार नहीं। प्यार है, विकार नहीं। भाव है, भाषा नहीं। अनुभूति है,

अभिव्यक्ति नहीं। चोट है, प्रहार नहीं। शिथिलता है, निर्जीवता नहीं। बेहोशी है, नशा नहीं। त्याग है, नीरसता नहीं। क्रम भंग है, रस-भंग नहीं। आकर्षण है, माया नहीं। विस्तार है, आडम्बर नहीं। प्रलाप है, निरर्थकता नहीं। ताप है, अभिशाप नहीं। क्या-क्या है, और क्या-क्या नहीं, यह केवल कल्पना से नहीं, प्रत्यक्ष अनुभव से जाना जा सकता है।

यदि साहित्य के सहृदय रसिक ग़ोतेख़ोर "प्रेमी" की "आँखों में" डूबकर उनके अंतस्तल की थाह लेंगे, तो, शायद, वे सहानुभूति का एक गहन-करुण उच्छ्वास छोड़े बिना ऊपर न आ सकेंगे।

किसी अज्ञात विमल विभूति के प्रति उनका उन्माद, प्रेम, स्मृति विरह, उपालंभ, मनुहार, वेदना, करुणा और न जाने क्या-क्या, इस कृति में इतने वेग से उमड़ पड़ता है कि उसमें साहित्य-संसार के सामान्य बंधनों का अक्षुण्ण रह जाना असंभव हो जाता है। फिर भी, इस वेग में कुछ कमी है, कुछ अधूरापन है। आँसुओं के अनंत उन्मत्त उष्ण सागर ढलका चुकने पर भी आँखों में बहुत कुछ छिपा रह जाता है। इसी अधूरी, अव्यक्त, अस्पष्ट अभिव्यक्ति में ही हमें उनके हृदय की अतुल-अगाध अनुभूति की एक अस्फुट झिलमिल झलक पाकर इस समय बरबस संतोष कर लेना पड़ता है। प्रेमी के ये उद्गार हृदय-स्पर्शी होने पर भी तुतले हैं, मीठे होने पर भी विश्रृङ्खल हैं, विस्तृत होने पर भी अधूरे हैं। हृदय की बात कई बार पूरी हो-होकर भी

पूरी न होने पाती है, कि, पुस्तक का अंत हो जाता है। अंतिम पंक्ति के अंत में हम "प्रेमी" का एक अधूरा विवश उच्छ्वास सुनकर दिल थाम कर रह जाते हैं।

कट्टर उपयोगिता-वादियों का अनुदार संसार चाहे इस वैज्ञानिक युग में "प्रेमी" के उद्‌गार इस रूप में "सुन्दर" स्वीकार न करे, पर हृदय वालों का विपुल विस्तार उन्हें, सम्मान न सही, प्यार की दृष्टि से अवश्य देखेगा।

"प्रेमी" उन भावुकों में हैं, जो न तो संसार से इतने ऊँचे उठ जाते हैं कि प्यार को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगें और न इतने नीचे गिर जाते हैं कि विकार को प्यार करने लगें। उनकी कविता उस निष्कपट सामान्य श्रेणी के भावुक मानवों की स्पष्ट भाषा है, जो हृदय रखते हैं, प्यार करते हैं, कष्ट सहते हैं और रोते हैं। "प्रेमी" की कविता का रंग पानी के रंग के समान है, जो भिन्न भिन्न कोटि के कला पारखियों के भिन्न-भिन्न रंग के हृदय-पात्रों में भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है।

"प्रेमी" की इस कृति में, एक ही से भावों की लगातार लड़ियाँ खोजने वाले, शृङ्खला बद्ध साहित्य के कट्टर पक्षपाती पाठकों को कुछ निराशा अवश्य होगी। वे इसमें कहीं कहीं पर तो, छन्द-छन्द पर भाव-परिवर्तन होते देखेंगे और कभी-कभी पास ही पास दो परस्पर विरोधी विचार। यह विशृङ्खलता "प्रेमी" के उस उन्माद की

द्योतक है, जिसे अस्थिरता से अत्यधिक प्रेम है। एक ही से विचारों की लड़ियाँ जोड़ते रहने का प्रयत्न "प्रेमी" या तो करते ही नहीं या कर ही नहीं पाते। उन्हें तो हृदय में जब जो जैसी भावना ज्यों ही उठे, त्यों ही उसे तभी जैसी-की-तैसी अपनी अटपटी भाषा में व्यक्त कर देने का मधुर रोग है।

फलतः इस पुस्तक के सभी छंदों में चमत्कार के चातकों को भी एक ही सा रस नहीं मिलेगा। फिर भी, वे इसके सरल प्रवाह में बहते-बहते बीच-बीच में चौंक पड़ेंगे—जो चाहते होंगे, वही पाकर। चाहे थोड़े ही से क्यों न हों, पर इस कंटक-कानन में कुछ सुमन ऐसे भी हैं, जिन की अमर सुगंध एक बार सूंघते ही सदा के लिए सहृयता के हृदय में बस जाती है, समालोचना का निर्भय सूच्यग्र चाहे उनके अन्तस्तल को निरंतर कुरेदकर छिन्न-भिन्न ही क्यों न करता रहे।

'प्रेमी' को अपनी मौलिकता पर भी कुछ गर्व होना स्वाभाविक ही है। उनकी प्रत्येक बात चाहे जैसे हो—उनकी अपनी होती है। यों तो बहुश्रुत कुशल समालोचक-प्रवर, चाहें तो भगीरथ प्रयत्न करके, बड़े से बड़े आचार्यों की रचनाओं में भी किसी पूर्ववर्ती कवि के भावों से साम्य दिखला दे सकते हैं, किन्तु, इसका निर्णय करना कभी-कभी कठिन हो जाता है कि कौनसा भाव चुरा कर लाया गया है, कौनसा जानबूझ कर सुन्दर-तर बनाकर अपना लिया गया है और कौनसा अनायास अनजान में ही किसी से मिल गया है। तथापि, इसमें तो कोई संदेह

बनाने वाला एवं
उससे कोसों दूर

अंतर को, ज़रा और
एक विशिष्ट उद्देश्य—एक
रहता है। उसके
रहती है। उसके
यों कह सकते हैं कि
भावी संगीत की
पहले ही से, कर
वीणा की तरह है,
नहीं रहती! भिन्न-
उसके तारों से
कल्पना नहीं की जा
है, पर, वीणा में
कृति दिखलाने
होगा कि इसके
हो गया है।
आदर्श से अन्त
भाव प्रवाह का

दम ही क्यों न घुँटने लगता। पर वे ठहरे कवि! आदर्श और उद्देश्य उनकी कला के पीछे-पीछे चलते हैं—आगे नहीं, उनके मानस का संगीत भावुकता के असीम हृदय पर सहसा जो विद्युत् रेखा खींच जाता है, आदर्शवादी संसार पीछे से उसी को नियमों की स्वर-लिपि में बाँधने का प्रयास किया करता है! वे संसार की रसिकता से श्रद्धा के नहीं, स्नेह-अर्घ्य के अधिकारी हैं, क्योंकि वे उसे उसके आदर्शों के अनुकूल नहीं, हृदय के अनुकूल सन्देश देते हैं। वे उपदेशक की तरह पूज्य नहीं, कवि की तरह प्यारे हैं। उनकी मुक्त वीणा रेकार्डों की रूढ़ि के बन्धनों से बँधी हुई नहीं है। उसकी स्वच्छन्द स्वर-लहरी जब तक भावनाओं के अनन्त आकाश में गूँजकर लय नहीं हो जाती तब तक, रसिक श्रोताओं को उसके विषय में मधुर जिज्ञासा बनी ही रहती है!

यों तो, संसार के सम्मुख, हृदय के अनिर्वचनीय भावों का प्रकाशन-सौष्ठव भी, अस्वाभाविक ही कहा जा सकता है, परन्तु वास्तव में परिश्रम और प्रतिभा—अस्वाभाविकता और स्वाभाविकता के अन्तर का परिणाम सौन्दर्य नहीं—प्रयत्न ही हो सकता है! किसी-किसी वनकुसुम में बाग़ों के सुरक्षित सुसिंचित कृत्रिम कुसुमों से कहीं अधिक सौन्दर्य, कहीं अधिक आकर्षण, कहीं अधिक रस और कहीं अधिक सौरभ होता है। पर क्या इतने ही से वह अस्वाभाविक मान लिया जाता है? देखना यह पड़ता है कि उसकी उस शोभा के मूल में प्रयत्नों की विपुलता है या प्रकृति-देवी का प्रेम-प्रसाद! यह एक सुलभ कसौटी है,

नहीं कि इन तीनों में से प्रथम प्रकार कवि को पंगु बनाने वाला एवं अत्यंत घृणित है और हमें हर्ष है कि हमारे "प्रेमी" उससे कोसों दूर हैं और रहेंगे।

"प्रेमी" की कविता, उपदेशक और कविके अंतर को, ज़रा और स्पष्ट कर देती है! उपदेशक के हृदय पर एक विशिष्ट उद्देश्य—एक निश्चित आदर्श आठों पहर अपना एकाधिपत्य जमाए रहता है। उसके विविध उद्‌गारों में उसी की अमरता की अमिट छाप रहती है। उसके उद्‌गार पीछे चलते हैं और आदर्श आगे! अथवा, यों कह सकते हैं कि उपदेशक का हृदय ग्रामोफ़ोन की तरह है, जिसके भावी संगीत की पूर्व कल्पना रेकार्ड चढ़ाते ही, कोई भी मर्मज्ञ, बहुत पहले ही से, कर ले सकता है। किन्तु, कवि का हृदय उस सरल वीणा की तरह है, जिसमें कोई विशिष्ट स्वर-माला पहले से संचित नहीं रहती! भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और भावनाओं के अंगुलि-स्पर्श से, उसके तारों से तत्काल भिन्न-भिन्न स्वर निकलते हैं, जिनकी पूर्व कल्पना नहीं की जा सकती! ग्रामोफ़ोन में बन्धन है—रूढ़ि है—पिष्टपेषण है, पर, वीणा में स्वतन्त्रता है—नवीनता है—प्रकृत वादक को तात्कालिक कृति दिखलाने की गुंजाइश है! इस पुस्तक के पाठकों को स्पष्ट प्रतीत होगा कि इसके कई छन्दों में प्रेम के आदर्शों में परस्पर किञ्चित् अनैक्य-सा हो गया है। यदि इसके रचयिता उपदेशक होते तो वे एक विशिष्ट आदर्श से अन्त तक चिमटे रहते, चाहे बेचारी सरलता, स्वाभाविकता और भाव प्रवाह का

दम ही क्यों न घुँटने लगता। पर वे ठहरे कवि! आदर्श और उद्देश्य उनकी कला के पीछे-पीछे चलते हैं—आगे नहीं, उनके मानस का संगीत भावुकता के असीम हृदय पर सहसा जो विद्युत् रेखा खींच जाता है, आदर्शवादी संसार पीछे से उसी को नियमों की स्वर-लिपि में बाँधने का प्रयास किया करता है! वे संसार की रसिकता से श्रद्धा के नहीं, स्नेह-अर्घ्य के अधिकारी हैं, क्योंकि वे उसे उसके आदर्शों के अनुकूल नहीं, हृदय के अनुकूल सन्देश देते हैं। वे उपदेशक की तरह पूज्य नहीं, कवि की तरह प्यारे हैं। उनकी मुक्त वीणा रेकार्डों की रूढ़ि के बन्धनों से बँधी हुई नहीं है। उसकी स्वच्छन्द स्वर-लहरी जब तक भावनाओं के अनन्त आकाश में गूँजकर लय नहीं हो जाती तब तक, रसिक श्रोताओं को उसके विषय में मधुर जिज्ञासा बनी ही रहती है!

यों तो, संसार के सम्मुख, हृदय के अनिर्वचनीय भावों का प्रकाशन-सौष्ठव भी, अस्वाभाविक ही कहा जा सकता है, परन्तु वास्तव में परिश्रम और प्रतिभा—अस्वाभाविकता और स्वाभाविकता के अन्तर का परिणाम सौन्दर्य नहीं—प्रयत्न ही हो सकता है! किसी-किसी वनकुसुम में बाग़ों के सुरक्षित सुसिंचित कृत्रिम कुसुमों से कहीं अधिक सौन्दर्य, कहीं अधिक आकर्षण, कहीं अधिक रस और कहीं अधिक सौरभ होता है। पर क्या इतने ही से वह अस्वाभाविक मान लिया जाता है? देखना यह पड़ता है कि उसकी उस शोभा के मूल में प्रयत्नों की विपुलता है या प्रकृति-देवी का प्रेम-प्रसाद! यह एक सुलभ कसौटी है,

जिससे किसी भी कवि की कृति की स्वाभाविकता का सफल परीक्षण हो सकता है ! 'प्रेमी' की इस कृति में अतिशयोक्ति, सूक्ति और काव्य-चमत्कार की एकाध झलक पाते ही भड़क उठनेवाले सहृदयों को चाहिए कि वे क्षण भर अपने असहिष्णु हृदय को इसके कार्य-कारण सम्बन्ध पर विचार कर लेने दें। अन्यथा, प्रकृति के रजत-निर्झर की चमक से एक-दम भड़क कर उसकी स्वाभाविकता पर, खान खोदकर निकाली जाने वाली चाँदी के आरोप का भार रख देनेवाले उतावले समालोचकों को समझाना कम से कम एक कवि की शक्ति के बाहर हो जायगा। सौभाग्यवश जिन्हें प्रेमी के सरल हृदय से कुछ भी परिचय प्राप्त है, वे खूब जानते हैं कि उनके सामान्य भाव-प्रवाह में भी कितना सौन्दर्य होता है ! फिर यदि कष्ट-साध्य, श्रम से प्राप्त, "सूक्ति"—चाँदी की चमक अनायास और अनाहूत ही उनके प्रकृत काव्य-निर्झर में आ जाती है, तो वे क्या करें ? प्यार की गंगा और चोट की यमुना में यदि दृश्य या अदृश्य रूप में "सूक्ति" की सरस्वती भी आकर मिल जाती है तो इसमें हृदय के संगम का क्या दोष ?

इस नवीन युग में, कई सज्जन, ऐसा प्रतीत होता है मानों, कविता को प्रकांड विद्वत्ता, निग्रह अथवा दर्शनशास्त्र के जटिल रहस्यों का ही प्रतिरूप समझ बैठे हैं। उनमें से कुछ तो कठिन-कठिन शब्दों के अजस्र आडम्बर को ही कविता मानते हैं, कुछ स्वयं स्वाभाविक एवं मौलिक हृदयोद्गारों से सरस साहित्य का भण्डार भरने में असमर्थ होते

हुए भी "अनुभूति ! अनुभूति !" की प्रबल पुकार मचाकर ही सरल साहित्यिकों पर रौब जमाना चाहते हैं और कुछ सुन्दर-सुन्दर शब्दों की अनोखी एवं आकर्षक योजना में छिपी हुई निरर्थकता को ही उच्च कोटि की आध्यात्मिक पहेली के रूप में उपस्थित करके कवि कहलाने की इच्छा रखते हैं। सौभाग्य या दुर्भाग्यवश बेचारे "प्रेमी" इनमें से किसी भी श्रेणी में नहीं आते। उनका भोला हृदय केवल वेदना की पूँजी लेकर ही कविता की इस ऊँची हाट में आ निकला है। वे उपर्युक्त श्रम-साध्य उपायों से "महामहिम" कहलाने की क्षमता नहीं रखते। प्राकृतिक प्रतिभा की प्रेरणा होते ही वे ऊँचे-ऊँचे शब्दों को चुन-चुनकर जड़ना भूल जाते हैं, आत्म-संयम के नाम पर भावों की चञ्चल मंदाकिनी का संवरण नहीं कर पाते और निष्कपट हृदय की पावन पुलक की स्पष्टता को बरबस रहस्य बनाने की चिन्ता भी उनके वश की बात नहीं रह जाती। उनका अनुभव है, कि जिस प्रकार प्रयत्न करके कोई कुछ लिखने में यशस्वी नहीं हो सकता, उसी प्रकार बलात् कोई कुछ न लिखने में भी सफलता नहीं पा सकता। उनके लिए वे कहते हैं, कि लिखने की हार्दिक इच्छा न होने पर जैसे लिखना नितान्त अशक्य है, वैसे ही प्रतिभा की प्रबल स्फूर्ति होने पर न लिखना भी अत्यन्त असम्भव है।

जब मैं "प्रेमी" की कविता पढ़ता हूँ, तो मुझे तत्क्षण प्रतीत होता है, मानों कोई पागल झरना बड़े वेग से बहता जा रहा है। वह अपने करुणा-प्रवाह में कभी-कभी अपना इतिहास भी भूल जाता है और कभी-

कभी अपना भविष्य भी। लोगों के हृदय पर बरबस जादू डालने के लिए अपने सरल स्वर में अधिक गम्भीरता, अधिक दार्शनिकता, अधिक रहस्य, अधिक शोभा, अधिक मधु, अधिक मद और अधिक स्थिरता लाने की चिन्ता में मुँह लटका कर बैठ रहने का उसे ज़रा भी अभ्यास नहीं है। वह केवल बहना जानता है। ऊँची-नीची, टेढ़ी-सीधी, मोटी-पतली, जैसी भी हो उसकी धारा "कल-कल-छल-छल" करती हुई चलती ही जाती है। पास के पेड़, पत्ती, पर्वत, बालू और नदी-नाले ही नहीं, उसे आसपास ही बहते हुए सागर तक का भी ध्यान नहीं रहता, जिसमें उसके जीवन का लय होने वाला है। दर्शक और समालोचक उसे देखा करें, वह उन्हें नहीं देखती। चलती ही जाती है—बस चलती ही जाती है। बहुतों को उसमें आनन्द नहीं आता। सच पूछो तो, ज्ञान-गम्भीर-मुद्रा के आकर्षण को उसमें कुछ है भी नहीं। पर कई पगले ऐसे भी हैं जो उसके चपल वेदना-प्रवाह में जीवन का सार पा जाते हैं। उसकी छोटी-छोटी चञ्चल लहरें उनके हृदय में गुद-गुदी मचा देती हैं। वे यह सोचना ही भूल जाते हैं कि करुणा की उस सुकुमार चञ्चलता के प्रवाह के नीचे खूब गहरी डुबकी लगाकर बाज़ार में बेच सकने योग्य लावण्य या मोती निकाल सकेंगे, या नहीं। न जाने क्यों इस संसार में, भूले से ही सही, विधाता ने कुछ ऐसी भी आँखों की सृष्टि कर डाली है, जिन्हें गम्भीर-प्रशान्त महा-समुद्र के गर्भ के कठोर मोती गिनने की अपेक्षा चपल निर्झर की सरल

लहरें गिनने ही में अधिक आनन्द आता है। उनके लिए तो करुणा ही सबसे बड़ी निधि है—सरलता ही सबसे बड़ा सुख—वेदना ही सब से बड़ा आनन्द !

संसार की अच्छी से अच्छी कविता का आनन्द भी "क्या" की संकुचित कसौटी से उतना अधिक नहीं लिया जा सकता, जितना कि "कैसे" की उदार समीक्षा से। पहली के क्षेत्र में मतभेदों का इतना कोलाहल मचा हुआ है कि उसमें कवि का कोमल स्वर न जाने कहाँ छिप जाता है। वास्तव में हमारी साहित्यिक असहिष्णुता यहाँ तक बढ़ गई है कि हम किसी को अपनी नई चीज़ लेकर इस ओर आते देखते ही बिना समझे-बूझे भड़क उठते हैं, किन्तु दूसरों का सहारा लेकर ही ईसा का दीवाना तुलसी के सर्वस्व राम पर लट्टू हो सकता है; मुहम्मद का शैदा मीरा के गिरिधर-नागर में तल्लीन हो सकता है। 'प्रेमी' की कविता में भी बहुत से रसिक उन्हें अपनी वेदना में इतना तन्मय पाएँगे कि वे यह जानना ही भूल जाएँगे कि वे क्या कह रहे हैं।

इस असीम विश्व में प्रत्येक हृदय की व्यथा का कारण भिन्न हो सकता है, उसका स्वरूप भी भिन्न हो सकता है, पर उसकी अनुभूति का स्पंदन प्रत्येक अन्तर्-तम में और अभिव्यक्ति का स्वर प्रत्येक उद्गार में समान ही पाया जाता है। अतः यदि हम भी प्रेमी के तुतले उद्गारों से विश्व की वेदना, रसिकता तथा सहानुभूति का क्षण भर किंचित

समन्वय कर बैठें, तो क्या कुछ समुचित न होगा ? अस्तु ! इस प्रकार, अवकाशाभाववश अन्त के आनन्द की आकांक्षा आरम्भ में ही कर उठने-वाले कोरे कामकाजी पाठकों की उतावली को असह्य प्रतीक्षा का, समालोचकों को सुअवसर का, प्रेमियों को मीठी पीड़ा का, कोमल हृदयवालों को करुणा का, भावुकों को भावावेश का, मर्मज्ञों को समाधि का, साधकों को आशा और निराशा की आँखमिचौनी का, सहृदयों को गुदगुदी का, कवियों को सहानुभूति का, घायलों को चोट का, अरसिकों को अटपटी उलझन का, भूले भटकों को स्मृति का, पागलों को उन्माद का, मतवालों को मद का और प्यासों को अतृप्ति का अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव कराते-कराते दिन में सौ बार हँसने और हज़ार बार रोनेवाली अन्तर्तम की छिपी हुई कसकों के गोपन की गाँठ खोलते-खोलते, 'प्रेमी' का यह भोला प्रलाप "कई जन्म पूरे हों फिर भी रहें अधूरे ही उच्छ्वास"—अपनी इस अद्भुत अभिलाषा को अधूरी ही छोड़ कर सहसा समाप्त हो जाता है। बस !

कवि की कामना है कि विश्व की विविध व्यथाओं से व्यथित विभिन्न व्यक्तियों में अभिन्न आकर्षण से, 'प्रेमी' की पीड़ा का एक-एक कण महाप्रसाद की तरह बँट जाय—तड़प कर लुट जाय।

मकरन्द-मन्दिर,
मुरार, ग्वालियर
होलिकादाह १९८५



—जगन्नाथप्रसाद "मिलिन्द"


आँखों में

संकेत

पीछे इस दुखिया जीवन के
ये पागल पन्ने खोलो,
पहले कलुषित हृदय,
वेदना के निर्मल जल में धोलो।

आँखों में

आँखों में क्या-क्या है देखें,
आँखों से आँखोंवाले।
इन आँखों ने बना दिए हैं—
लाखों अन्धे, मतवाले।

इन पापिन आँखों ने तुमको—
यदि न कभी देखा होता।
तो, मेरी फूटी किस्मत में—
कुछ सुख का लेखा होता।

विष भी है, पीयूष वही है—
प्रेम, अरे, यह क्या माया?
अखिल विश्व की व्यथा!
तुझे क्या केवल यह प्रेमी, भाया?

अन्तरिक्ष से, जल-थल से, क्यों—
सारा प्रेम समेट-समेट—
इस प्रेमी ने तुझ अभिमानी—
प्रियतम को कर डाला भेंट ?

आँखों में छाया है मेरी,
किस भावी का कटु उपहास ?
अन्तस्तल की प्रति-ध्वनि में है—
किस निष्ठुर स्वर का आभास ?

आँखों में पहली झाँकी है,
आँखों में पिछला सुख है।
आँखों में अबकी झाँकी है,
आँखों में अगला दुख है।

कितने घन के टुकड़े आकर,
झर-झर बरस चले जाते !
इस प्रेमी की भग्न कुटी की—
अग्नि कभी न बुझा पाते।

कितनी वार सदन, अवनी में,
अपनी मादकता भरता !
कितनी वार कोकिला का स्वर,
हृदय सुहृद्-जन का हरता !

स्वर्ण-जाल ऊषा का कितनी—
वार फैल होता अवसान !
पर मेरे जीवन की सन्ध्या—
से न हुआ फिर कभी विहान !

आँखों में प्रिय की आँखें हैं,
आँखों में प्रिय की पहचान।
आँखों में प्रिय की लाली है,
उस लाली में प्रिय का मान।

आँखों में मद का प्याला है,
प्याले में मतवालापन !
आँखों में मद का उतार है,
उस उतार में रूखापन !

सुख के स्वप्नों का आँखों से—
उतर गया सब नशा अजान!
नाना नाम-रूप रख, आगे—
घूमा करती व्यथा महान!

कितनी मादक सन्ध्याओं—पर
ये उदास आँखें डाली।
कितनी तत्परता से मैंने—
की इस दुख की रखवाली!

किस आतुरता से है मैंने
आकुलता को अपनाया!
स्वयं सजाई अपने जग पर—
अमर वेदना की छाया!

छिपा रखा था अन्तर में ही
अपनी आहों का इतिहास,
तो भी बरबस निकल पड़े हैं
आज हृदय से ये उच्छ्वास।

भय है, कहीं न दुख की वर्षा
गीला कर दे सुख का हास !
मेघ न बन जाएँ जगती की—
आँखों में मेरे उच्छ्वास !

सौ-सौ छिद्रों से गाता है—
हृदय सदा करुणा के गान !
कहीं प्रतिध्वनि करे न कम्पित,
किसी कुसुम के कोमल प्राण !

आँखों में पिछली अतृप्ति है,
आँखों में प्रियतम का प्यार !
त्याग, वियोग, विलाप, पिपासा,
प्राणों की आकुल मनुहार।

आँखों में मैं दीप छिपा कर,
तुम्हें खोजने जाता हूँ।
कहीं फूँककर बुझा न दो तुम !
मन-ही-मन भय खाता हूँ !

आँखों में मेरा शुभ शशि है,
आँखों में ज्योत्स्ना-में स्नान।
आँखों में यह चन्द्र-कटारी,
आँखों में अंधेर महान!

सारी रात व्यथा, मेरी ही
तारों में चमचम करती!
होते ही प्रभात, अन्तर के—
आँसू फूलों में भरती!

छिपी हुई थी हास—ज्योति में—
मेरी ही करुणा काली।
हरे रंग से ढकी हुई है,
जैसे मँहदी में लाली!

आँखों में है स्वाति-बूँद औ'
आँखों में ही शशि की कोर।
आँखों में ही चातक की रट,
आँखों में ही असुध चकोर!

आँखों में दीपक की लौ है,
आँखों में है विमल प्रकाश !
आँखों में पतंग का जलना,
आँखों में है ज्योति-विनाश !!

आँखों का कलियों सा खिलना,
आँखों पर अलियों का प्यार !
आँखों में भ्रमरों का क्रन्दन,
आँखों में फिर सूनी डार !!

उपवन में कितनी कलिकाएँ,
प्रतिदिन मल डाली जातीं !
कितनी विपदाएँ अम्बर से—
अवनी पर उतरी आतीं !!

आते आते जो किरणें घर—
घर में स्वर्ण लुटाती हैं।
जाते-जाते अन्धकार का,
काला पट बुन जाती हैं !

आँखों में आँखों की पुतली,
पुतली में पुतलीवाला।
आँखों में रूठी आँखें हैं,
आँखों में जीवन काला!

आँखों में उन्माद हृदय का,
आँखों में बिगड़ी घड़ियाँ।
आँखों में स्मृति के कुसुमों की—
रूखी-सूखी पंखड़ियाँ!

जर्जर अन्तर को क्या निष्ठुर,
स्मृति फिर से सीने देगी?
वह मीठी प्रतीति क्या मुझ को,
अब सुख से जीने देगी?

नित्य तुम्हारी निष्ठुरता को
याद करूँगा, रोऊँगा!
स्मृति के अश्रु-सिन्धु में अपनी,
जीवन-नौका खोऊँगा।

पर, क्या करुणा के गानों का,
क्रम चलता रह सकता है?
कब तक कोई जीता दुख के—
अंचल में रह सकता है?

करुणा के इतने बोझे को
सह न सकेंगे कोमल प्राण।
फट जावेगा अन्तस्तल, रह—
जावेगा आधा ही गान!

आँखों में करुणा का सागर,
आँखों में विषाद का ज्वार।
किससे मिलनोन्मुख लहरों में—
मचल रहा है हाहाकार?

कितना करुण निराशा—निशिमें—
विफल विसर्जन जीवन का!
क्या न कभी यौवन आएगा—
मेरे उजड़े उपवन का?

इतने दिन की बेचैनी का—
पाया क्या प्यारा परिणाम ?
पल भर को भी क्या न भरेगा—
कभी हृदय का सूना धाम ?

मेरा जीवन सना हुआ है—
असफलता मुसकाती से।
समझ भाग्य का लेख, लगालूँ—
इस अभाव को छाती से।

आशा की वे तिरछी किरणें—
अब न करेंगी उर में घाव।
अर्पित है अपूर्णता के—
चरणों पर आज पूर्णता-भाव !!

"वह कोई अपना सपना था"—
कह कर जी बहला लूँगा।
शून्य गगन के सूनेपन में,
सूना प्रियतम पा लूँगा।

आँखों में है जीवन-नौका,
आँखों में उसकी पतवार !
आँखों में है चतुर खिवैया,
आँखों में है पारावार !

आँखों में टूटी नौका है,
आँखों में छूटी पतवार !
आँखों में रूठा माझी है,
आँखों में तूफ़ान अपार !!

आँखों में है सिन्धु-किनारा,
आँखों में है सुन्दर द्वीप !
आँखों में सागर का तल है,
आँखों में हैं छूँछे सीप !!

मेरा अभ्युत्थान छिपाए—
था सुख के भूलों का अन्त !
जैसे छिपा हुआ रहता है—
खिलने में फूलों का अन्त !!

आँखों में शुभ रत्न-राशि हैं,
आँखों में है जिनका लोभ ।
आँखों में प्रियतम की माया,
माया की छाया में क्षोभ !!

आँखों में मणियों की माला,
आँखों में आँसू का हार !
आँखों की आँखों में तृष्णा,
आँखों में है नदी अपार !!

मछली में सागर तिरता है,
सीपी में है रत्नाकर !
आँखों के आँगन में बस्ती,
कोनों में सूने निर्झर !!

आँखों में मेरी शोभा है,
आँखों में मेरा अभिसार ।
आँखों में है रुदन हृदय का,
आँखों में बिखरा शृङ्गार!

आँखों में हैं करुण-पुकारें,
आँखों में है करुण-कथा !
आँखों में उनकी असफलता,
आँखों में है मरण-व्यथा !

आँखों में उच्छ्वास, अश्रु हैं,
आँखों में नीरव भाषा !
आँखों में प्रियतम की हठ है,
आँखों में रोती आशा !

भूले-भटके तारे-से तुम,
चमक उठे मम सूने में !
ओहो ! कितनी मादकता थी—
उन किरणों के छूने में !!

भर अतृप्ति मेरे मानस में,
हुए न जाने कहाँ विलीन ?
सतत प्रतीक्षा में रहता हूँ,
अपलक आँखों से तल्लीन !

धीरे-धीरे भर जाता है,
नक्षत्रों से नभ सारा।
किन्तु, नहीं दिखता है वह,
सब से न्यारा प्यारा तारा !

नयनों का तप—विफल प्रतीक्षा !
यह बुझता दीपक अपना !!
निष्ठुरता की दया !
सरस भावी का वह अस्थिर सपना !!

सूने स्वप्नों के आँचल में,
क्यों पालूँ प्राणों की प्यास ?
क्यों अभिलाषा को तरसाऊँ,
आशा का कर-कर उपहास ?

आहों को बन्दी कर रक्खूँ,
नयनों में आँसू घेरूँ।
यौवन की अभिलाषाओं पर—
पीड़ा का पानी फेरूँ।

क्या उच्छ्वास, अश्रु, आकुलता—
भुला सकेगी वह घटना ?
क्या काले जीवन-पट से है—
कभी व्यथा-लेखा हटना ?

हृदय थामने से क्या थमता—
कभी कलेजे का तूफ़ान ?
मन समझाने से क्या होगा ?
समझें कैसे पीड़ित प्राण ?

इन करुणा की रजत-प्यालियों—
को ढुलकाया लाखों वार !
पर, न कभी खाली हो पाईं !
कितने इनमें पारावार !!

आँखों में है करुण-कथा के—
अमर आँसुओं की भाषा !
कौन डूबकर सुनने आवे—
इन आँखों की अभिलाषा ?

समझ लिया है भली भाँति से,
बहरा है सारा संसार!
कौन सुनेगा इस प्रेमी के—
दलित हृदय की करुण-पुकार?

दानी जग निर्दयता-निधि से—
कहीं न यह झोली भर जाय!
कहीं न उर की पीर जगत् की—
दूषित आँखों से मर जाय!!

कहीं न नीरस जग में फँसकर—
अन्तर-तम की करुण-पुकार—
सब का खेल बने बच्चों-सा,—
खेले उस से सब संसार!

मेरा दुख हत्यारे जग का,—
बन जाए न खिलौना-सा!
इस भय से उर की कुंजों में,
छिपा रखा मृग-छौना-सा!

अमर वेदना अन्तर तम में,
आँखों में अधसूखापन।
रूखी हँसी खेलती मुख पर,
विरह-व्यथित है भीतर मन !

न तो पूछता ही है कोई,
न मैं बताता अपनी प्यास !
सब से ठोकर खाकर कैसे,
करूँ किसी का मैं विश्वास ?

समझ सकेगा क्या कोई भी,
अन्तस्तल की मूक पुकार ?
व्यर्थ मिलाता हूँ रो-रोकर,
मिट्टी में मोती लाचार।

आँखों में निर्धन की झोली,
आँखों में वैभव-भंडार !
आँखों में है भेंट किसी की !
और किसी का क्रूर प्रहार !!

प्रेमी की निर्धन झोली में—
एक प्रेम ही तो था धन!
वह चाहे कोई ले लेता!
किया तुम्हें ही वह अर्पण!!

मेरी आशाओं की हत्या—
कर डाली तुमने, हा हंत!
किसे पता था होगा मेरे—
मधुर स्वप्न का ऐसा अन्त!

अपने स्वप्नों के चित्रों पर—
फेर निराशा की कूची,
भावी के अंचल में लिखता—
हूँ अपने दुख की सूची!

जग से आँख चुरा गाता हूँ—
घायल अन्तस्तल के राग।
विगत विभव की छाया में भी—
लगा चुका चुपके से आग!!

जीवन की असफलता का ही—
एक सफल अभिनय मैं हूँ!
परिचय-हीन विश्व की मीठी—
पीड़ा का परिचय मैं हूं !!

किसी विजन वन के प्रान्तर में—
सूने गौरव की हूँ राह!
बड़ी-बड़ी अभिलाषाओं की—
एक सिसकती-सी हूँ आह !!

वैभव की निर्धनता हूँ मैं,
निर्धनता का वैभव हूँ!
अपयश का मैं गौरव हूँ!
गौरव का भोला शैशव हूँ,

तिरस्कार ही के काले—
अंचल में पला हुआ प्राणी—
सुख से सहता हूँ अपमानों—
की मैं सारी मनमानी!

दुख से छके हुए प्राणों का
थका हुआ कोमल तन हूँ।
करुणा के चरणों पर अपना
चढ़ा चुका यह जीवन हूँ।

नयनों की नौकाओं में भर
हृदय—सिंधु से चुन मोती
मेरी पीड़ा अपने धन पर
इतराती—गर्वित होती!

आँखों में है हाट हृदय की
जिसमें है मेरी दूकान।
देकर अमर प्रेम, अभिलाषा,
पाना अन्तर्-पीर महान।

शीतल ज्वाला, मीठी पीड़ा,
अमर वेदना, हाहाकार!
इस छोटी सी झोली में—
भर रक्खे कितने दुख-संसार!!

आँखों में मेरी मद-प्याली,
प्याली में सकुचाती चाह !
कितना मादक पी जाने पर—
प्याली ठुकराना है ! आह !!

मैंने अपना हृदय सुमन-सा
चढ़ा दिया तव चरणों पर !
फेक दिया उसको अब तुमने—
बासे फूलों-सा पथ पर !!

अरे, सुधा के स्रोत, कभी मैं—
तेरे तट पर था आया !
अन्तस्तल तक जाकर भी,
उर प्यासा-का-प्यासा पाया !!

जब मानिक-मदिरा की प्याली—
पर था प्रेमी का अधिकार,
बिना पिए आँखें चढ़ जातीं !
पीता कैसे, प्राणाधार !!

हाय, हृदय-कलिका क्या मेरी—
मुरझाने को ही फूली !
कोई कर्कश कर से मल दे—
इसी लिए मद में झूली !

आँखों में वह स्वर्ग-सृष्टि है,
आँखों में मधु का भंडार !
आँखों में हैं फेर दिनों के !
आँखों में सूना संसार !

ऊषा की लाली निरखूँ,
या, लखूँ प्रतीक्षा-पथ खाली !
संध्या की बुझती आभा,
या, आशा की झुकती डाली !

सुमन चुनूँ उपवन के, या,
मैं गूँथूँ आँसू की माला !
किसी शान्त छाया में बैठूँ,
या, पालूँ कोई ज्वाला !

आँखों में अंकित कर रक्खूँ—
क्या जगती का हास-विलास !
या, आँसू से लिख डालूँ निज—
दुखिया-जीवन का इतिहास !

कोयल की तानों पर मोहित—
हो, अपनी तानें भूलूँ !
या, अपनी सूनी कुटिया में—
इस संचित दुख में झूलूँ !

भोगों का मैं भक्त बनूँ, या,
झुकूँ त्याग के चरणों पर !
वार दिए सौ-सौ सुख-सागर—
इन आँखों के झरनों पर !

मेरी सुधि के प्रथम तार से
झंकृत हुआ करुण-संगीत !
फिर कैसे भर लेता प्रेमी—
हास, विलास, विभव से गीत ?

दुख की दीवारों का बंदी—
निरख सका न सुखी जीवन !
सुख के मादक स्वप्नों तक से—
बनी रही मेरी अनबन !

आँखों में प्रियतम की छाया,
छाया में वह शान्ति—निवास !
फिर, उस छाया से निर्व्वासन !
यह क्या ! करुणा का उपहास !!

देकर पुनः छीन ली तुमने—
अपनी दिव्य दया की भीख !
दिए दान को फिर हथियाना !
किसने दी तुमको यह सीख !!

आँखों में सौन्दर्य्य सृष्टि का,
आँखों में उसका शुचि सार !
आँखों में बन्दी अभिलाषा,
आँखों में संसार असार !

आँखों में पहली आँखें हैं,
पिछली आँखें आँखों में!
रोती हैं, बोती हैं मोती—
पहली आँखें आँखों में!!

आँखों में आनन्द पुराना,
आँखों में वह उमँग, उफ़ान!
आँखों में है दुख का डेरा,
आँखों में उर का तूफ़ान!!

आँखों में वह मधुर मिलन की—
सुन्दर मतवाली लाली!
आँखों में यह विरह-निशा है—
मतवाली, काली, ख़ाली!!

आँखों में घूमा करता है—
निशि दिन एक यही सपना—
"बना पराया सा बैठा है—
कहीं रूठ मेरा अपना"!

वसुधा की सारी करुणा को—
वीणा में भर कर एकांत,—
प्रिय के कानों तक पहुँचाकर,
कितनी बार हुआ उद्भ्रान्त !

आँखों में हैं घाव हृदय के,
हैं उपचार तुम्हारे पास !
पर तुम उनमें चुभा रहे हो
नयनों का निष्ठुर उपहास !

आँखों में हैं दिल के टुकड़े,
टुकड़ों में आकुल अरमान !
अरमानों में उर की तड़पन
तड़पन में तूफ़ान अजान !

भोला-भाला

होत

सुन्दर !

कोमल कमलों से, मधु से मृदु,
शिशु से शुचि, सुन्दर, भोले—
इतने निष्ठुर ! किसी हृदय के—
भाव भला किसने तोले ?

किसने देखा पार क्षितिज के—
अन्धकार या स्वर्ण-प्रभात ?
किसी हृदय के अन्तरतम का
कब रहस्य होता है ज्ञात ?

सब ही अपना धुँधला दीपक—
लेकर मन्दिर में आए !
किन्तु, तुम्हारे सत्य रूप को—
क्या पहचान कभी पाए ?

किस 'उजियारे' से देखूँ मैं—
अपनी आँखों का तारा ?
है प्रसिद्ध यह बात जगत् में—
'दीप तले ही अँधियारा !'

वसुधा की सारी करुणा को—
वीणा में भर कर एकांत,—
प्रिय के कानों तक पहुँचाकर,
कितनी बार हुआ उद्भ्रान्त !

आँखों में हैं घाव हृदय के,
उपचार तुम्हारे पास !
पर तुम उनमें चुभा रहे हो
नयनों का निष्ठुर उपहास !

आँखों में हैं दिल के टुकड़े,
ड़ों में आकुल अरमान !
अरम में उर की तड़पन,
तड़पन न अजान !

भोला किसी का—
कितना निष्ठुर !
कटारी सा चुभता है—
कभी हृदय में शशि सुन्दर !

कोमल कमलों से, मधु से मृदु,
शिशु से शुचि, सुन्दर, भोले—
इतने निष्ठुर ! किसी हृदय के—
भाव भला किसने तोले ?

किसने देखा पार क्षितिज के—
अन्धकार था स्वर्ण-प्रभात ?
किसी हृदय के अन्तरतम का
कब रहस्य होता है ज्ञात ?

सब ही अपना धुँधला दीपक—
लेकर मन्दिर में आए !
किन्तु, तुम्हारे सत्य रूप को—
क्या पहचान कभी पाए ?

किस 'उजियारे' से देखूँ मैं—
अपनी आँखों का तारा ?
है प्रसिद्ध यह बात जगत् में—
'दीप तले ही अँधियारा !'

कितने पागल प्रेमी सूने—
में छेड़ा करते हैं तान !
कितनों की टूटी वंशी में
विह्वल हैं करुणा के गान !

जग के कण-कण से बहता है—
कोई करुणा का संगीत !
कुछ ऐसा लगता है मानों—
जग ही है करुणा का गीत !

सब ही सौख्य-नीड़ से उड़कर
होते व्यथा-गगन में लीन !
सब का अन्तस्तल दिखता है—
किसी वेदना में तल्लीन ।

मेरे मन की सब दुर्बलता—
जब आँखों में घिरती है,
उथल-पुथल मच जाती उर में,
जाने क्या-क्या करती है !



आँखों में घन, घन में बिजली,
चमक रही बिजली में पीर !
दुख की वर्षा सहते सहते,
प्रेम-गली में, हुआ अधीर !

आँखों में ही प्रेम-गली है,
किन्तु, गली में तीखे शूल !
आँखों में पहली आँखों के—
प्रणय-कुंज के कोमल फूल !

आँखों में पीड़ा का दर्पण,
विश्व-व्यथा की उसमें छाप।
आँखों में भर रक्खा मैंने—
जग का पाप, ताप, अभिशाप !

आँखों में दुर्दिन की भाषा—
कहती भग्न हृदय की पीर !
हृदय दुखेगा यदि प्रेमी का—
क्यों न बहेगा उन से नीर !

क्या अधिकार चकोर विचारे—
का सुन्दर शशि के ऊपर!
क्यों किरणें आकर करती हैं
नलिनी का चुम्बन भू पर!

जो अधिकार पतंग दीन को
दीपक पर जल मरने का,
है अधिकार वही प्रेमी को
प्यार तुम्हें ही करने का!

आँखों में यौवन का उपवन,
आँखों में उसका माली!
आँखों में खिलना, फलना है,
आँखों में उपवन खाली!

आँखों में सागर का बढ़ना,
लहरों पर सीपी तिरना।
सीपी में मोती का बनना,
फिर मिट्टी में जा गिरना!

ज्यों-ज्यों अधिक-अधिक मचलेगा—
पीड़ित प्राणों का विद्रोह ;
त्यों-त्यों अधिक-अधिक उमड़ेगा
प्रियतम के प्रति पावन मोह !

भागे, क्या भागोगे, निष्ठुर,
पुतली के बन्दी मेरे,
आँखों में ताला देकर मैं,
रक्खूँगा तुम को घेरे !

अलि, ये कमल नहीं ऐसे हैं,
रस लेकर चल दो चुपचाप !
बन्दी रह, लूटो भी तो कुछ—
साथ-साथ मेरे सन्ताप !

समझो यह भी मन में—
निश्चय, कभी विहान !
चल देंगे," पर, ऐ प्यारे,
आँखों की निशि कल्प-समान !

...धिकार चकोर विचारे—

का ... शशि के ऊपर !

क्या किरणें ... पात करती हैं

नलिनी का चु... पर !

जो अधिकार पतं... को

दीपक पर ... मरने का,

है ... कार वही प्रेमी को

...गुमों ही करने का !

...खों में यौवन का उपवन,

आँखों में ... उसका माली !

आँखों में खि... फलना है,

आँखों में उपवन... ली !

आँखों...

... बढ़ना,

...पी ...ना।

... का बनना,

... में जा गिरना !

आँखों में अतीत की आँखें,
आँखों में भावी चितवन !
वर्तमान भी यहीं खेलता—
है आँखों में आँसू बन !

आँखों में है आँख-मिचौनी,
पीड़ा की-सुख की भोली !
कोई छिपे-छिपे भर देता
दुख से प्रेमी की झोली !

आँखों में ही मौन निमन्त्रण,
आँखों में नीरव मनुहार !
आँखों में प्रियतम का आना,
और पहनना आँसू-हार !

तुम से—मिलन-कल्पना ने ही
मेरी नस-नस को कीला !
आँखों से आँसू झर-झर कर
रखते घावों को गीला !

क्या अधिकार चकोर बिचारे—
का सुन्दर शशि के ऊपर!
क्यों किरणें आकर करती हैं
नलिनी का चुम्बन भू पर!

जो अधिकार पतंग दीन को
दीपक पर जल मरने का,
है अधिकार वही प्रेमी को
प्यार तुम्हें ही करने का!

आँखों में यौवन का उपवन,
आँखों में उसका माली!
आँखों में खिलना, फलना है,
आँखों में उपवन ख़ाली!

आँखों में सागर का बढ़ना,
लहरों पर सीपी तिरना।
सीपी में मोती का बनना,
फिर मिट्टी में जा गिरना!

आँखों में अतीत की आँखें,
आँखों में भावी चितवन !
वर्तमान भी यहीं खेलता—
है आँखों में आँसू बन !

आँखों में है आँख-मिचौनी,
पीड़ा की-सुख की भोली !
कोई छिपे-छिपे भर देता
दुख से प्रेमी की झोली !

आँखों में ही मौन निमन्त्रण,
आँखों में नीरव मनुहार !
आँखों में प्रियतम का आना,
और पहनना आँसू-हार !

तुम से—मिलन-कल्पना ने ही
मेरी नस-नस को कीला !
आँखों से आँसू झर-झर कर
रखते घावों को गीला !

आँखों से देखो, आँखों में—
ये दो खारे झरने हैं!
तुम्हीं सोच लो, कभी हृदय के—
हरे घाव क्या भरने हैं?

आँखों में प्यारे दर्शन हैं,
अंकित है पहली तस्वीर!
भले मिटाओ, पर न मिटेगी—
यह पत्थर की अमिट लकीर!

निष्ठुरता की रगड़ लगाकर—
व्यर्थ मिटाने का है यत्न!
जितनी रगड़ो, उज्ज्वल होगी!
हाँ, चलने दो यही प्रयत्न!

तोड़-तोड़ कर शत-शत बन्धन,
लाँघ-लाँघ कर लाखों कोट!
मेरा प्यार सदा तव चरणों—
पर बरबस जावेगा लोट!

ज्यों-ज्यों अधिक-अधिक मचलेगा—
पीड़ित प्राणों का विद्रोह ;
त्यों-त्यों अधिक-अधिक उमड़ेगा
प्रियतम के प्रति पावन मोह !

भागे, क्या भागोगे, निष्ठुर,
पुतली के बन्दी मेरे,
आँखों में ताला देकर मैं,
रक्खूँगा तुम को घेरे !

अलि, ये कमल नहीं ऐसे हैं,
रस लेकर चल दो चुपचाप !
बन्दी रह, लूटो भी तो कुछ—
साथ-साथ मेरे सन्ताप !

और न समझो यह भी मन में—
"होगा, निश्चय, कभी विहान !
हम चल देंगे," पर, ऐ प्यारे,
आँखों की निशि कल्प-समान !

मेरे आँसू के धागों से,
पानी की ज़ंजीरों से,
काली पुतली के पिंजरे में,
बन्दी हो तुम कीरों से!

अन्तर्-पट पर अंकित है जो,
हो कैसे आँखों की ओट?
तुम्हें क़ैद रखने को काफ़ी है—
मेरी आँखों का कोट!

बहुत झिझकते थे तुम मुझ से—
सेवा करवाने में नाथ!
आँखों में ही अब तो तुम हो!
सब कुछ है मेरे ही हाथ!

आँखों में निर्मल जल भी है,
मुक्ता-मणि औ, हृदय-सुमन,
करुणा की कल-कंठी वीणा,
सब कुछ है, ऐ जीवन-धन!

जो कुछ भी है, वह अक्षय है,
सब पर है मेरा अधिकार!
नित्य तुम्हें पूजूँगा जी भर!
कैसी बीती प्राणाधार!!

पर, यह व्यर्थ सान्त्वना मन की,
आँखों में है, तो क्या है?
हाँ, प्रत्यक्ष तुम्हें पाऊँ, तो,
समझूँ तुम को पाया है।

आँखों में अंकित है सब कुछ—
वे अपनी बीती बातें!
निकल गए, हा, कितने मेरे—
मंगल दिन, मादक रातें!

पापी जीवन की घड़ियों में
एक सहारा रोना है!
टूटे-फूटे मुक्ताओं के—
जल से पलकें धोना है!

रोना मेरा सुख, दुख, आशा,
लिप्सा, उत्कंठा, उन्माद,
स्वर्ग, नरक, कामना, वासना,
धर्म और दर्शन के वाद !

आँखों के बुझते प्रकाश से
सुलगी ज्वाला अन्तर में।
किस दुर्दिन में आग लगी है—
घर के दीपक से घर में !

रखूँ हिमालय-शैल हृदय पर,
प्रियतम, पीर दबाने को।
भर लूँ सागर को अन्तर में—
उर की आग बुझाने को !

उलट जायगा शैल हिमालय,
आग लगेगी सागर में।
व्यर्थ यत्न है, अधिक-अधिक—
धधकेगी ज्वाला अन्तर में !

आँखों में अंकित होगी, प्रिय,
प्रेमी की हँसती सूरत !
देखो, क्या श्रृङ्गार किए हैं—
अब मेरी मुरझी मूरत !

आँखों में, ऐ आँखों वाले,
भर लो प्रेमी की तसवीर।
फिर, तुम भले चले ही जाना,
ढलका पलकों से कुछ नीर !

सहा न जाता सतत तरसना,—
नाथ, तुम्हारे प्रेमी से !
क्या अतृप्ति का पागलपन है,
पूछो तो मेरे जी से !

तुम से मिलकर तो, ऐ प्यारे,
दूनी पीड़ा बढ़ जाती !
हाँ, यदि, तुम में मिल पाता,
तो, यह व्याकुलता मिट पाती !

तुम औ, मैं जब तक दो-दो हैं,
तब तक बुझती प्यास नहीं !
दुखिया के "एकांत" प्रेम को—
"दो" पर है विश्वास नहीं !

तुम में मुझे मिला लो, या,
मुझ में ही तुम, आ, मिल जाओ,
खुला हुआ है द्वार हृदय का,
ऐ प्रियतम, आओ, आओ !

किन्तु, नहीं ! क्या कभी दुखी की—
कुटिया में सुख है आता ?
धीरे-धीरे जोड़ चुका उर—
पीड़ा से अक्षय नाता !

कूक-कूक उठती है कोयल-सी—
प्रियतम की मादक याद !
गूँज-गूँज उठता है मधुकर—
सा मेरा पिछला उन्माद !

चमक-चमक पड़ते बीते दिन
तारों-से अन्तर्-पुर में।
जल-जल उठता है, आए दिन,
ज्वालामुखी व्यथित उर में।

उमड़-उमड़ आँखें बह चलती—
हैं बरसाती नाले-सी।
जीवन के सब ओर वेदना—
छा जाती है जाले-सी।

प्रेमी के प्यासे प्राणों को, देकर
पीड़ा की भिक्षा—
रूठ गए मुँह फेर; हमारे—
दाता की जैसी इच्छा!

यदि इस पीड़ा में सुख बनकर
आँखों में बस जाते तुम—
जीवन-व्यापी करुण—गान में
मधुर रागिनी गाते तुम,—

तो इस व्यथित अभागे उर में
एक शान्त-रेखा होती—
तो ये मेरे असफल आँसू
बन जाते मानिक-मोती !

किन्तु न आशा के आँचल में
यह सुन्दर सपना पल जाय !
कोमल निष्ठुरता न तुम्हारी
मेरी आहों में जल जाय !

क्यों कसकों में तुम्हें बुलाऊँ
करुणा की मनुहारों से,
क्यों न अकेला झंकृत कर लूँ—
उर, पीड़ा के तारों से।

तुम हो जहाँ, वहीं से कह दो
एक बार-बस अंतिम वार—
"अपनी निष्ठुरता से बढ़कर
करता हूँ मैं तुझ को प्यार" !

जीवन के असंख्य शूलों को, समझूँ—
मृदु फूलों का सार
नीरव निशि में यदि सुन पाऊँ
कभी तुम्हारा यह उद्‌गार !

प्रेम-सहित बेड़ी पहनाओ,
विष दो, मुझ को है स्वीकार ।
सत्य प्रेम के पद पर वारूँ
सौ-सौ जीवन सौ-सौ वार !

दुख ही मेरा सुख, निर्जन ही—
मेरा सोने का संसार,
रोना ही मेरा हँसना है
और प्यार ही प्राणाधार ।

आँखों में प्रेमी की आओ,—
कोयल, चातक, मोर, चकोर !
प्रणय-कथा से भर दो सत्वर—
अवनि और अम्बर के छोर !

गाते-गाते इसी प्रतीक्षा-पथ पर
कभी तुम्हारा नाम,
सोच लिया है, इस जीवन का
कर दूँगा मैं पूर्ण विराम !

सन्ध्या की बुझती आभा में
बुझा हृदय का सब संताप,
छोड़ चमकती तारों-सी स्मृति,
रवि-सा चल दूँगा चुपचाप !

खुले हुए पिंजड़े में कब तक
बन्दी रह सकता है कीर ?
फूटे हुए घड़े में कब तक,
जीवन-धन, रह सकता नीर ?

आँखों में है व्यथा ;—बढ़ेगी।
आगे है समाधि मेरी।
आँखों में आँसू भर-भर कर
याद करोगे फिर मेरी।

कब तक अपना जीवन बाँधूँ—
आशा के कृश धागे से?
कैसे अपने दुख को टालूँ
इन आँखों के आगे से?

गालों पर सूखे आँसू-सा
इस जग में अब मेरा वास,
कब से मुझ को बुला रहा है
ऊपर वह नीला आकाश।

जग की सूनी हाट! न लेगा—
सुख देकर कोई दुख-भार
कब तक दलित-हृदय व्यापारी—
करे वेदना का व्यापार!

भर तो चुका हृदय का प्याला,
अब ढुलका ही देने दो!
ऐ मेरे प्यारे, दुनिया से
मुझे विदा ले लेने दो।

पीछे से आकर पाओगे
शेष भस्म अरमानों की।
प्राण, तुम्हारी बाट जोहती,
सजा निराशा प्राणों की!

आँखों में आँसू भर, उसकी—
ठण्डी कर देना ज्वाला!
अन्त समय इतनी-सी इच्छा—
रखता है यह मतवाला।

नहीं शक्ति आँखों में बाक़ी,
हिल-डुल कर जो कर लें बात!
देखो, ये मुँदती हैं पलकें,
वह आती है काली रात।

क्यों न प्रथम ही ज्ञात हुआ यह,
निष्फल है मेरा रोना!
सूनेपन से भरा हुआ है—
करुणा का कोना-कोना!

किसके अन्तस्तल में भर दूँ—
अपनी आँखों का संदेश ?
किसने इस जग में देखा है—
मेरे प्रियतम का शुभ देश ?

आह, किसे कैसे जतलाऊँ
अपने जी की जलन अपार ?
किसी शिथिल शीतल शय्यापर
सोया है सारा संसार !

कौन कह रहा है कानों में,
कहूँ तुम्हीं से बारम्बार !
बिना कहे क्या पीर न उर की
सुनते होंगे प्राणाधार !

नाथ, तुम्हारे वन में क्या—
खुलते कुसुमों के कोष नहीं ?
क्या पंखुड़ियों से आँसू-सी—
ढलका करती ओस नहीं ?

कभी, देखकर उसे, न सोचा—
होगा क्या तुमने मन में,
"यों ही आँसू बरसाता
होगा वह दुखिया निर्जन में!"

अलि से बिछुड़े किसी कुसुम की
करुणा का बिखरा शृंगार
लखकर क्या न हृदय में, प्रियतम,
आता होगा कभी विचार :—

"मेरे कारण, अखिल विश्व का—
अन्तर में भर कर संताप,
किसी वियोगी की अभिलाषा—
तरस रही होगी चुपचाप!"

आँखों के आगे, न किसी की—
फूटी वीणा—टूटी तान!
ऐ अनजान, तभी गाते हो—
दुखी जगत् में सुख के गान!

तभी न करुणा की कालिंदी—
अन्तर से झरती दिन रात।
तभी न पीड़ा की परिभाषा
पुलकित प्राणों को है ज्ञात।

हो भी यदि उर के कोने में
भूला-भटका करुणा-कण ;
क्षण भर भूल कृपणता अपनी,
मुझको दे दो जीवन-धन !

अपनी व्यथा बनाकर बादल
बरसा दो इस कुटिया पर !
दे दो मेरे ही नयनों में
अपने नयनों के निर्झर !

"छल-छल" नर्तन करे नयन में
जगती की संचित पीड़ा !
आँखों वाले इन आँखों में
देखें आँखों की क्रीड़ा !

भूलो, इस प्रेमी ने की हो
यदि अनजाने में मनुहार!
बाँध टूट जाने दो उर का
बहने दो आँसू की धार!

अमरबेलि-सी बनकर स्मृति
मेरी आँखों में छाई है!
अन्तर् का सारा रस पीकर
देखो अब रँग लाई है!

अच्छा है, इसको बढ़ने दो,
कोने-कोने छाने दो!
ढक जाने दो जिससे सब कुछ,
केवल स्मृति रह जाने दो!

गत सुख की छाया ही मुझको
विकल बना देती है आह!
मरें निगोड़ी वे सुख-घड़ियाँ,
मरे हृदय की सारी चाह!

दुख, स्वागत, वेदना, व्यथा, आ !
भर ले मेरा भाग्याकाश !!
दूर रहे दुखिया आँखों से
सुख की छाया का आभास !

सुख-घड़ियों का रूठा रहना—
भी तो कितना सुन्दर है !
विकल-वेदना के आँगन में
सोना कितना मृदुतर है !

विरह-निशा की गाढ़ी मदिरा
कितनी मीठी, मादक है !
काली चादर सूनी रातों की
कितनी उन्मादक है !

ज्यों-ज्यों विरह-निशा बढ़ती है,
बढ़ता मेरा प्यार अपार !
जल-थल, अनिल-अनल, कण-कण में
मिलते हो तुम प्राणाधार !

पत्थर के टुकड़ों में भी तो
मिलता प्रियतम का आभास !
उठा हृदय पर रख लेता हूँ
करता रहे जगत उपहास !

आँखों में दुख के बादल हैं,
रहें निरन्तर, रहने दो !
बहने दो प्रेमी को निशिदिन
दुख-सरिता में बहने दो !

जल हो, थल हो, या कि अतल हो,
पल भर मिले सहारा,
जहाँ डूब जाये यह नौका
वह ही बने किनारा !

हृदय, उमंग, चाह, अभिलाषा,
मरती हैं, मर जाने दो !
आग लगे यौवन में, इसको
मिट्टी में मिल जाने दो !

मरे तुम्हारा प्रेम प्राण-धन,
उसपर मेरा क्या अधिकार ?
जिसे सिसकना ही प्यारा है,
मत बरसाओ उसपर प्यार !

मत छीनो मेरा सुख छलिया,
दुख ही सुख है, रहने दो !
जीवन की सूनी घड़ियों में
करुण कहानी कहने दो !

अपनी करुणा के बदले में
मत छीनो मेरा उन्माद !
तुमसे कहीं अधिक मीठी है,
नाथ, तुम्हारी मादक याद !

मेरी बेहोशी में, प्यारे,
चुरा न लेना बेहोशी !
सुख की साँस लिया करता है
दुख में दुख का संतोषी !

मेरे अश्रु-कणों पर ढालो
मत, तुम आँसू की बूँदें !
कहीं आँख मेरी खुलते ही
मेरे अश्रु आँख मूँदें !

इस सूने पथ पर न बिछाओ
तुम अपने सुख के दाने
मन ये जाल तुम्हारे सारे
अब प्रेमी ने पहचाने !

जग का बन्दी हूँ, बन्धन से—
हिल-मिल गया हृदय का मौन !
सिसक-सिसक थक गईं उसासें,
जी की जलन जतावे कौन ?

बोलूँगा अब कभी न जग में
कुछ भी गर्व भरी बोली !
अब न भरूँगा मैं इन अंधी
अभिलाषाओं से झोली !

जग की निष्ठुरता के आगे
नत मस्तक है प्रेमी का;
बन्दी हूँ अतृप्ति का, किससे
हाल कहूँ अपने जी का!

धन कुबेर का क्या है मुझको
क्या है राज्य भुवन भर का!
कहीं बैठ दो बूंदों में—
ढलका दूँगा सागर उर का!!

चाह नहीं है अब आँखों की
आँखों में है ही क्या सार!
आँखें मूँद तुम्हें पाता हूँ—
तम में प्रियतम प्राणाधार!

क्यों जग में रह, व्यर्थ
प्रतीक्षा-पथ पर दें निशिदिन फेरी!
आँखों में अनन्त की मिलकर
हों अनन्त आँखें मेरी!

विगत प्रेम अब पूजा बन कर
स्मृति के मन्दिर में आया !
भेंट चढ़ाने को, प्रेमी का—
भग्न-हृदय लेकर आया !

लाल करो कितनी भी आँखें,
रुलवाओ, कलपाओ भी !
कुछ भी करो, तुम्हें पूजूँगा !
पूजन को ठुकराओ भी !!

व्यथित हृदय की पहली झाँकी,
उर के ये थोड़े उद्गार !
शेष, सिन्धु-सा छिपा हुआ है—
अन्तस्तल में हाहाकार !!

मूर्छित मदमाता सुख जिसमें—
पड़ा हुआ है आँखें मूँद,
उस पीड़ा के प्याले से ये
बरबस छलक पड़ीं "दो बूंद" !

कब तक मरु में मोती बोऊँ
करूँ विजन में करुण पुकार ?
सुख से बिगड़े श्रवण—
सुनेंगे कैसे उर का हाहाकार ?

जहाँ न अपना ही उर करता
अपनी सत्ता पर विश्वास,
नभ में क्षीण-तारिका-जैसा
इस जग में अब मेरा बास !

हृदयहीन बसते हों जिसमें,
जिसमें निष्ठुरता का राज,
उस जग से जाने दो मुझको
छोड़ अधूरी आहें आज !

मिलन-मार्ग ही में नभ-भू के
मिट जाने वाला जीवन,
मैं हूँ अखिल-जलद-बूंदों से
एक अलग बिछुड़ा जल-कण !

करुणा की कुण्ठित वीणा की
मैं हूँ एक अधूर ी तान!
मिट-मिट कर भी—
कभी न मिटने वाले हैं मेरे अरमान!

रहने भी दो, करुण-कथा—
कह-कह कर अब क्या पाना है?
हृदय, चलो अज्ञात लोक को,
इस जग से अब जाना है!

जहाँ न मुख से कहना पड़ता
"करता हूँ मैं तुमसे प्यार।"
जहाँ न जतलाया जाता हो
अपना एक-मात्र अधिकार!

मुँह न खोलना पड़े जहाँ पर—
उर की बात बताने को,
जहाँ न कण-कण में मिलता हो
केवल परिचय पाने को!

नीरव नयन हृदय की बातें—
जहाँ प्रकट कर देते हों,
जहाँ हृदय से मूल्य हृदय का
ज्ञात हृदय कर लेते हों !

केवल एक बार मिलते ही
हृदय परस्पर मिल जाते,
जहाँ न सुन्दर मुख वालों का
हृदय कभी निष्ठुर पाते !

एक बार अपना लेने पर
जहाँ न हो शंका-संदेह !
जहाँ प्रेम पर न्यौछावर हों—
लाखों जीवन, लाखों देह !

जहाँ प्रेम-योगी राजा हो
प्रेम प्रजा का हो जीवन,
ले जाने दो वहीं मुझे अब
अपने संचित करुणा-कण !

मिलन, वियोग एक से ही हैं
और एक ही हैं परिणाम
प्रेम-पन्थ के भटके पन्थी
बहक-बहक करते बदनाम !

मिलन समय के मादक दिन भी
सपने की सी रातें हैं।
सुख, दुख, हर्ष, विमर्ष, नित्य की
जानी-बूझी बातें हैं !

पीड़ा की बेहोशी में ही
आता हमको सच्चा होश !
लुटी हुई झोली में से जब
हँसने लगता है संतोष !

मधुर-मिलन के स्मृति-चिह्नो तुम,
कभी न करना मेरी याद !
है वियोग ही अन्त जगत का,
मिलन घड़ी भर का उन्माद !

किन्तु, विदा लूँ कैसे तुमसे
ऐ जीवन-संगिनि पीड़ा !
हाय, हृदय में कभी न तुमने
की होती मादक क्रीड़ा !!

अयि अतृप्ति, ऐ रुदन अधूरे,
उर के आधे हाहाकार !
कभी समाप्त न होने वाली
ऐ मेरी असफल मनुहार !!

अभिलाषा की भस्म भग्न-उर के
उजड़े-बिखरे शृंगार !
कैसे तुम्हें छोड़ कर चल दूँ
करुणा सागर के उस पार !

सुख-दुख, हँसना-रोना, जिसको
जीना मरना एक-समान,
उसे अधूरे ही प्यारे हैं
आशा, अभिलाषा, अरमान!

अच्छा है, उनकी निष्ठुरता—
अमर रहे, मेरी पीड़ा।
करते रहें अधूरे आँसू
आँखों में असफल क्रीड़ा!

खटका करे हृदय में काँटा—
आती रहे किसी की याद,
यही प्रेमियों की इच्छा है,
यही प्रेम का है उन्माद।

दुख से छुके हुए प्राणों में
सिसका करे तरसती प्यास!
कई जन्म पूरे हों फिर भी—
रहें अधूरे ही—उच्छ्‌वास!

पाँव पखारे नित प्रियतम के
पुतली में यह पागल प्यार!
आँखें सीपी में मोती-सी
संचित रखें सदा मनुहार!!

शुद्धि-पत्र

परिचय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	३	भौरें	भौंरे
५	१९	कवि जनोचित	कवि-जनोचित
६	१०	पृष्ट	पृष्ठ
६	११	कँपित	कम्पित
६	१३	उच्छ्‌वसित	उच्छ्‌वसित
६	१५	जंज़ीरे	जंज़ीरें
७	२	क्रम	क्रम-
७	१०	स्मृति	स्मृति,
८	१३	कला	कला-
८	१७	शृङ्खला वद्ध	शृङ्खला-बद्ध
९	३	हृदय	हृदय
९	९	क्या	क्यों
९	११	निर्भय	निर्मम
९	१४	जैसे	जैसी
११	३	विद्युत् रेखा	विद्युत्-रेखा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	६	स्नेह-अर्ध्य	स्नेह-अर्घ्य
११	१५	परिणाम	परिमाण
१२	१९	अजस्त्र	अजस्र
१४	१७	भूले	भूल
१५	१०	दूसरों	दूसरी

आँखों में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	किस्मत	क़िस्मत
७	६	प्यार !	प्यार
२९	३	अँचल	अंचल
४०	४	बाद	बाद
४१	३	हैं	है
४४	२	शान्त	शान्ति
४९	१२	होंगे	होगे
६०	१५	मिलता	मिलना

पृष्ठ ८ पंक्ति ९, पृष्ठ १७ पंक्ति १, पृष्ठ २७ पंक्ति ७, पृष्ठ ४० पंक्ति ६, ११, १६, पृष्ठ ५० पंक्ति १० और पृष्ठ ५१ पंक्ति २ में 'अन्तर' को 'अन्तर्' पढ़िये।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	६	स्नेह्-अर्ध्य	स्नेह्-अर्घ्य
११	१५	परिणाम	परिमाण
१२	१५	अजस्त्र	अजस्र
१४	१७	भूले	भूल
१५	१०	दूसरों	दूसरी

आँखों में

१	७	किस्मत	क़िस्मत
७	६	प्यार !	प्यार
२९	३	अँचल	अंचल
४०	४	बाद्	बाद
४१	३	हैं	है
४४	२	शान्त	शान्ति
४९	१२	होंगे	होगे
६०	१५	मिलता	मिलना

पृष्ठ ८ पंक्ति ९, पृष्ठ १७ पंक्ति १, पृष्ठ २७ पंक्ति ७, पृष्ठ ४० पंक्ति ६, ११, १६, पृष्ठ ५० पंक्ति १० और पृष्ठ ५१ पंक्ति २ में 'अन्तर' को 'अन्तर्' पढ़िये।



